जंगल के दावेदार

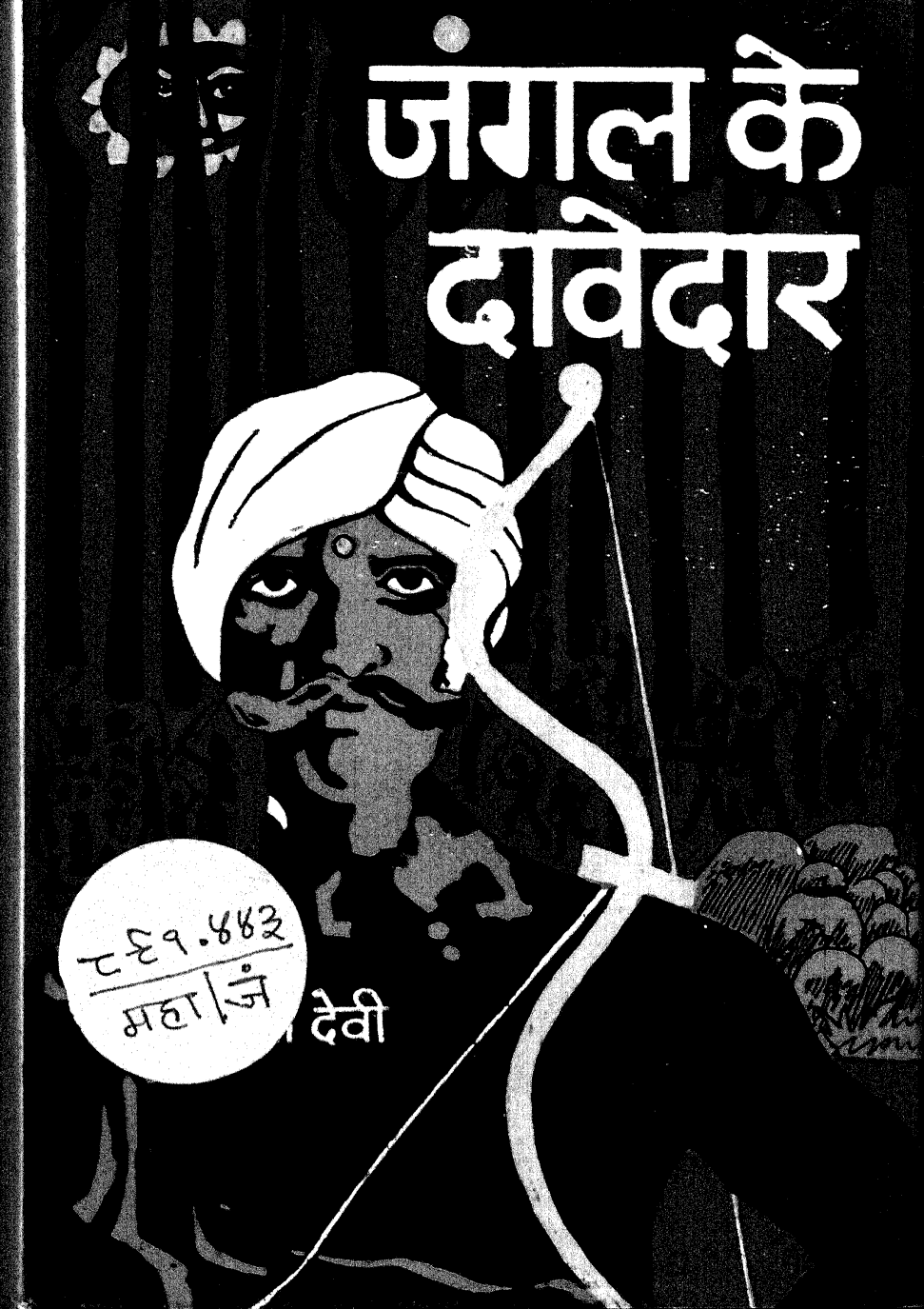

८९१.४४३
महा/जं

देवी

हर दिन प्रगतिशील, मानवतावादी साहित्य पाने के लिए

- देश-दुनिया की हर महत्वपूर्ण घटना पर मजदूर वर्गीय दृष्टिकोण से लेख
- सुबह-सुबह प्रगतिशील कविता, कहानियां, उपन्यास, गीत-संगीत, हर रविवार पुस्तकों की पीडीएफ
- देश के महान क्रान्तिकारियों भगतसिंह, राहुल, गणेश शंकर विद्यार्थी आदि का साहित्य पीडीएफ व यूनिकोड फॉर्मेट में

मजदूर बिगुल व्हाटसएप्प चैनल से जुड़ने के लिए अपना नाम और जिला लिखकर इस नम्बर पर भेज दें - 9892808704

वैकल्पिक नम्बर : 9619039793

फेसबुक पेज : fb.com/unitingworkingclass

टेलीग्राम चैनल : www.t.me/mazdoorbigul

जंगल के दावेदार

बिहार के अनेक जिलों के घने जंगलों में रहनेवाली आदिम जातियों की अनुभूतियों, पुरा-कथाओं और सनातन विश्वासों में सिझी सजीव, सचेत आस्था का चित्रण !

जंगलों की माँ की तरह पूजा करनेवाले, अमावस की रात के अँधेरे से भी काले—और प्रकृति जैसे निष्पाप—मुंडा, हो, हूल, संथाल, कोल और अन्य बर्बर (?), असभ्य (?) जातियों द्वारा शोषण के विरुद्ध, और जंगल की मिल्कियत के छीन लिए गए अधिकारों को वापस लेने के उद्देश्य से की गई सशस्त्र क्रांति की महागाथा !

25 वर्ष का अनपढ़, अनगढ़ बीरसा उन्नीसवीं शती के अंत में हुए इस विद्रोह में संघर्षरत लोगों के लिए 'भगवान' बन गया था—लेकिन 'भगवान' का यह संबोधन उसने स्वीकार किया था उनके जीवन में, व्यवहार में, चिंतन में और आर्थिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों में आमूल क्रांति लाने के लिए।

कोड़ों की मार से उधड़े काले जिस्म पर लाल लहू ज्यादा लाल, ज्यादा गाढ़ा दीखता है न ! इस विद्रोह की रोमांचकारी, मार्मिक, प्रेरक सत्यकथा पढ़िए—**जंगल के दावेदार** में। हँसते-नाचते-गाते, परम सहज आस्था और विश्वास से दी गई प्राणों की आहुतियों की महागाथा—**जंगल के दावेदार** !

हिन्दुस्तानी एकेडेमी, पुस्तकालय
इलाहाबाद

वर्ग संख्या ८९१.४४३

पुस्तक संख्या महा/जं

क्रम संख्या १०७६४

जंगल के दावेदार

[आदिम जातियों के सशक्त विद्रोह की
मानवीय मूल्यों से ओतप्रोत महागाथा]

राधाकृष्ण द्वारा प्रकाशित
महाश्वेता देवी की अन्य रचनाएँ

- 1084वें की माँ
- घहराती घटाएँ
- भटकाव
- दौलति
- ग्राम बांग्ला, भाग 1-2
- शालगिरह की पुकार पर
- श्री श्रीगणेश महिमा
- मूर्ति
- ईंट के ऊपर ईंट
- भारत में बंधुआ मजदूर
- अक्लान्त कौरव

जंगल के दावेदार

महाश्वेता देवी

रूपान्तर
जगत शंखधर

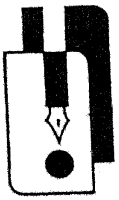

अंकुर प्रकाशन

दिल्ली-51

ISBN 81-7119-354-4

जंगल के दावेदार (उपन्यास)
© महाश्वेता देवी, कलकत्ता

पहला हिंदी संस्करण : 1981
चौथी आवृत्ति : 1997

मूल्य : 125 रुपये

प्रकाशक
अंकुर प्रकाशन
जी-17, जगतपुरी, दिल्ली-110 053

मुद्रक
तरुण प्रिंटर्स
शाहदरा, दिल्ली-110 032

JANGAL KE DAWEDAR (Novel) by Mahashweta Devi

भूमिका

भारतवर्ष के स्वाधीनता-संग्राम के इतिहास में बीरसा मुंडा का नाम और विद्रोह अनेक दृष्टियों से स्मरणीय और सार्थक है। इस देश की सामाजिक और आर्थिक पृष्ठभूमि में उसका जन्म और अभ्युत्थान केवल एक विदेशी सरकार और उसके शोषण के विरुद्ध नहीं था। यह विद्रोह साथ ही साथ समकालीन सामन्ती व्यवस्था के विरुद्ध भी था। इतिहास की इन सब विवेचनाओं से काटकर बीरसा मुंडा और उसके अभ्युत्थान की सही-सही विवेचना असंभव है।

लेखक के रूप में, समकालीन मनुष्य के रूप में एक वस्तुवादी ऐतिहासिक का समस्त दायित्व वहन करने में हम सदा ही प्रतिश्रुत हैं। दायित्व स्वीकार करने का अपराध समाज कभी क्षमा नहीं करेगा! मेरा बीरसा-केन्द्रित उपन्यास उसी प्रतिश्रुति का ही परिणाम है।

फिर भी उपन्यास की विधा सदा ही अपनी आंगिक रीति मानकर चलती है। इस उपन्यास का भी इसीलिए बीरसा की मृत्यु से अन्त होता है। किन्तु जीवन—विद्रोह—जो भी प्रचलित और प्रवाहित है—उसकी सचाई किसी काल में किसी भी देश में नेता की मृत्यु से समाप्त नहीं हो जाती। कालान्तर में उत्तराधिकार के पथ पर वह बढ़ता रहता है। विद्रोह से जन्म लेती है क्रान्ति। इस उपन्यास के अंत के बाद भी उपसंहार के संयोजन से यही अभीष्ट है।

इस उपन्यास को लिखने में सुरेशसिंह रचित Dust Storm and Hanging पुस्तक के प्रति मैं विशेष रूप से ऋणी हूँ। इस सुलिखित तथ्य-पूर्ण ग्रंथ के बिना 'जंगल के दावेदार' का लेखन संभव न होता।

'अरण्येर अधिकार' (मूल उपन्यास का बंगला नाम) वर्ष 1975 के 'बेतार जगत् पत्रिका' में धारावाहिक रूप में प्रकाशित हुआ था। प्रस्तुत पुस्तक उपन्यास का परिवर्धित, परिमार्जित और हिन्दी रूप है। पुस्तक को प्रकाशित करने के लिए प्रकाशक मेरे धन्यवाद के पात्र है।

—महाश्वेता देवी

डॉ० कुमार सुरेशसिंह को

9 जून, साल 1900। राँची की जेल।

सवेरे आठ बजे बीरसा खून की उलटी कर, अचेत हो गया। बीरसा मुंडा—सुगाना मुंडा का बेटा; उम्र पच्चीस वर्ष—विचाराधीन बन्दी। तीसरी फ़रवरी को बीरसा पकड़ा गया था, किन्तु उस मास के अन्तिम सप्ताह तक बीरसा और अन्य मुंडाओं के विरुद्ध केस तैयार नहीं हुआ था। उस समय मुंडा लोगों की ओर से बैरिस्टर जेकब लड़ रहे थे। वह अब भी लड़ रहे हैं। बीरसा को पता था कि जेकब उनकी ओर से लड़ेंगे। बीरसा को पता था कि जेकब को उसके लिए लड़ना न पड़ेगा। क्रिमिनल प्रॅसीजॅर कोड की बहुत-सी धाराओं में बीरसा को पकड़ा गया था, लेकिन बीरसा जानता था कि उसे सजा नहीं होगी।

भोला बीरसा अनजान है, लेकिन वह एक तसवीर के बाद दूसरी तसवीर—इसे पहचान सकता है—सब देख सकता है। भात मुंडा लोगों के जीवन में स्वप्न ही बना रहता है। घाटो[1] एकमात्र खाद्य है जो मुंडा लोगों को खाने को मिलता है। इसी से भात का मिलना एक सपना बना रहता है। किसी-न-किसी तरह भात के सपने ने ही बीरसा के जीवन को नियंत्रित कर रखा था। अधिकतर समय बीरसा की ज़ोरों की शिकायत रहती है 'मुंडा केवल घाटो ही क्यों खायें? दिकू[2] लोगों की तरह वे भात क्यों न खायें?' और भात राँधा था, इसलिए तीसरी फ़रवरी को बीरसा पकड़ा गया। बीरसा सो रहा था। औरत भात पका रही थी। नीले आकाश में धुआँ उठ रहा था, बीरसा नींद की गोद में था; तभी लोगों ने उठता हुआ धुआँ देख लिया।

उसके बाद बनगाँव—उसके बाद खूंटी—उसके बाद राँची। बीरसा के

---

1. मिला-जुला मोटा अनाज।
2. गैर-आदिवासी; आदिवासियों का शोषण करने वाले।

हाथों में हथकड़ियाँ थीं; दोनों ओर दो सिपाही थे। बीरसा के सिर पर पगड़ी थी; धोती पहने था। बदन पर और कुछ नहीं था—इसी से हवा और धूप एक साथ चमड़ी को छेद रहे थे। राह के दोनों ओर लोग खड़े थे। सभी मुंडा थे। औरतें छाती पीट रही थीं; आकाश की ओर हाथ उठा रही थीं। आदमी कह रहे थे : 'जिन्होंने तुम्हें पकड़वाया है वे माघ महीना भी पूरा होते न देख पायेंगे। वे अगर जाल फैलाये रहते हैं तो उस जाल में पकड़े शिकार को उन्हें घर नहीं ले जाने दिया जायेगा।'

किन्तु बीरसा उन पर ख़फ़ा नहीं होगा। पकड़वा दिया; क्यों न पकड़वा देते ? डिप्टी-कमिश्नर ने उन्हें गिनकर पाँच सौ रुपये नहीं दिये क्या ? पाँच सौ रुपये बहुत होते हैं ! किसी भी मुंडा के पास तो पाँच सौ रुपये कभी नहीं हुए; नहीं होते। मुंडा अगर रात में सोते-सोते सपना भी देखता है तो सपने में बहुत होता है तो वह महारानी[1] मार्का दस रुपये देख पाता है। उन्हें पाँच सौ रुपये मिले हैं—क्यों न बीरसा को पकड़वा देते ?

असल में बीरसा को अपने ऊपर गुस्सा आ रहा था। नींद क्यों आ गयी ? नींद न आ जाती तो वह जागता रहता। आग जलाकर भात न राँधने देता। जब आग न सुलगती, आसमान में धुआँ न उठता, कोई भी देख या जान न पाता ! राह चलते-चलते बीरसा के मन में हो रहा था—इस समय भी अचेत बीरसा के मन में आया—वह आग उन्होंने बुझा तो दी थी न ? मुंडा लोगों को कम ही ध्यान रहता है। धक-धक जलती आग से जंगल जल जाता है, दावानल लपलपाकर फैल जाती है, और बरसों के लिए जंगल सूखा, और बड़ा गरम हो जाता है। इसी से तो बीरसा ने 'उल-गुलान'[2] में सब-कुछ अच्छी तरह जला डालना चाहा था। उलगुलान की आग में जंगल नहीं जलता; आदमी का रक्त और हृदय जलता है ! उस आग में जंगल नहीं जलता ! मुंडा लोगों के लिए जंगल नये सिरे से माँ की तरह बन जाता है—बीरसा की माँ की तरह; जंगल की संतानों को गोदी में लेकर बैठता है।

इसीलिए तो बीरसा ने जंगल का अधिकार चाहा था !

वह जंगलों को दिकू लोगों के अधिकार से छीन लेगा। जंगल मुंडा लोगों की माँ है और दिकू लोगों ने मुंडा लोगों की जननी को अपवित्र कर रखा है। बीरसा ने उलगुलान की आग जलाकर माँ-जंगल को शुद्ध करना

1. महारानी विक्टोरिया।
2. बीरसा मुंडा द्वारा संचालित आंदोलन।